

गज़ल अब हमारी तहजीब की आबरू बन गई है - देवी नागरानी सुधाओम ढींगरा द्वारा लिया गया देवी नागरानी का साक्षात्कार

देवी नागरानी



dnangrani@gmail.com

देवी नागरानी से मुझे अंजना संधी ने विश्व हिन्दी सम्मलेन (न्यूयार्क) में मिलवाया था। मुलाकात कुछ क्षणों की थी। बस इतना याद रहा कि ठहरा हुआ सुन्दर व्यक्तित्व है। समय अपने पृष्ठ पलटता रहा और मैं उन्हें पढ़ने में व्यस्त रही। एक दिन अचानक देवी जी का फोन आया कि आप मेरे शहर से होते हुए कहीं जा रही हैं और एक रात रुकेंगी। बस रचनाकारों को क्या चाहिए..... रचनाकार का सान्निध्य मिलते ही महफिल जम गई। पहली बार आपकी सुरीली आवाज और गज़ल कहने के अंदाज से परिचित हुई। आप न्यूजर्सी में रहती हैं और मैं नॉर्थ कैरोलाईना में। अगले साल फिर मिलना हुआ और कवि गोष्ठी का होना स्वाभाविक था। सिन्धी और हिन्दी की चर्चित गज़लकार देवी नागरानी को करीब से पहचानने और समझने का अवसर मिला। आपके द्वारा की गई पुस्तक समीक्षाएँ, आप की गज़लें अंतरजाल पर बिखरी हुई हैं। उन्हें तो पढ़ती रहती हूँ पर इस अनौपचारिक साथ ने आपके व्यक्तित्व और कृतित्व के कई पहलुओं को उजागर किया- सुधा ओम ढींगरा

कुछ क्षण तो ऐसे होंगे, जिन्होंने आपको गज़लकार बनाया ?

सुधाजी, यह सवाल ऐसा है जिसका हर जवाब मुझे आज तक सवाल ही लगता आया है, शायद कलम निरंतर गतिशील होकर अपनी दिशा स्वयं तलाशती है। वजह हो यह जरूरी नहीं। गज़ल लिखने का मेरा पहला प्रयास सन 2003 से शुरू हुआ। एक जुनून था, जो सैलाब बनकर मुझे अपने साथ बहाता रहा। मुझे गज़ल लिखने का प्रोत्साहन सिन्धी समाज के वरिष्ठ गज़लकार श्री प्रभु छुगानी 'वफा' जी से मिला। कदम-दर-कदम उनकी रहनुमाई पाकर मैं गज़ल की बारीकियों को, विधा की जरूरतों को, सबसे अहम कायदे ग्रहण करती रही।

देवी जी, सिन्धी की आप स्थापित लेखिका हैं, सिन्धी लेखन में आप कब आईं? गज़ल की तरफ आकर्षित होने के कारण।

सुधाजी, आपने इस सवाल के माध्यम से मुझे मेरे अतीत के उस मोड़ पर लाकर छोड़ा है, जहाँ मैंने आज तक कभी मुड़कर नहीं देखा। सन 2001 में जाने किस सनक के तहत मैंने अपनी मातृ-भाषा सिन्धी सीखी, जिसमें कठिन परिश्रम की माँग थी। यह

एक साधना थी, पर मैंने निष्ठा के साथ उस पथ पर अपने कदम टिकाए रखे। कुछ छोटे-बड़े आलेख लिखे, जो 'हिन्दीवासी' राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका में छपते रहे। फिर कुछ कहानियाँ लिखीं और खलील जिब्रान और रूमी की कविताएँ अंग्रेजी से सिन्धी भाषा में अनुवाद की, जो मेरी एक नई पहचान सिन्धी साहित्यकारों और पाठकों में करती रहीं। जब भाषा का बीज फलीभूत होता है तो सामने अनावृत आसमान ही होता है, और कुछ नहीं !! यह जिंदगी भी बड़े अजीब ढंग से हमसे अपना हर पृष्ठ पढ़वाती है। सिन्धी अदब की दुनियाँ में जब पहला कदम रखा, गज़ल की तकनीक सीखी और आज भी उसी पाठशाला की शागिर्द बनी निरंतर सिन्धी और हिन्दी गज़ल लिखने का प्रयास कर रही हूँ। और 2004 में मेरा पहला सिन्धी गज़ल संग्रह "गम में भीनी खुशी" मंजरे-आम पर आया। गज़ल की ओर आकर्षित होने का कोई ठोस कारण तो नहीं, पर इसके लिखने में मुझे बहुत आजादी मिलती, सोचने की, उड़ने की, किसी भी दिशा में विचरण करने की। कोई बंधन नहीं, एक विचार को दो मिसरों में समावेश करना, कभी सरल तो कभी

पुनर्वाइ

बहुत कठिन लगता रहा, पर नव निर्माण की लालसा से, उसका रूप और शिल्प, उसकी रचनात्मकता और कलात्मकता एक नए भाव-बोध के धरातल पर स्थापित होती रही, जिसने मेरे अंदर एक चेतना और जागरूकता पैदा कर दी। शायद यही वह कारण हो !!

अच्छा यह बताएँ कि उर्दू गज़ल को आप हिन्दी गज़ल से कितना भिन्न पाती हैं?

हिन्दी और उर्दू का बड़ा गहरा संबंध है। समकालीन हिन्दी और उर्दू गज़ल को अलग करके नहीं देखा जा सकता। हिन्दी गज़ल कहने वाले कवि, उर्दू की शब्दावली को भी अब एक लय-ताल के साथ उर्दू गज़ल के रंग और खुशबू के साथ बखूबी समावेश कर रहे हैं। दोनों भाषाओं में सांप्रदायिकता की मिली-जुली रंग-ओ-खुशबू पायी जाती है, और दोनों धाराओं का समान स्रोत है। यहाँ तक कि हिन्दी और उर्दू की तुलना दो आँखों से की जाती है, जो दोनों की सुंदरता में निखार लाती हैं।

उर्दू के गज़लकार फारसी, अरबी व तुर्की के अल्फाज बहुत ज्यादा इस्तेमाल करते हैं, जिनको आम आदमी पूरी तरह समझ नहीं पाता। इसी बात को मद्दे-नजर रखते हुए आजकल संग्रहों में, पत्रिकाओं में और ब्लॉग्स पर भी गज़ल के अंत में उन कठिन शब्दों के शब्दार्थ दिये जाते हैं। हिन्दी में ऐसा नहीं है, बोलचाल की भाषा में सरलता और सहजता से अपनी बात प्रत्यक्ष रखी जा सकती है, अनिवार्य शर्त यह है कि बहर में वह नियमों का पालन कर रही हो...! गज़ल अब हमारी तहजीब की आबरू बन गई है।

गज़ल के लिए मीटर के अनुशासन की जरूरत होती है। वह अनुशासन ही गज़लकार को कुशल बनाता है। आप इसके बारे में क्या सोचती हैं?

आप गज़ल के महत्त्वपूर्ण अनुशासन

की डगर पर मुझे ले आई हैं, जो इस विधा का मूल आधार है। गज़ल कहने के लिये हमें कुशलशिल्पी बनना होता है ताकि हम शब्दों को तराश कर उन्हें मूर्त रूप दे सकें, उनकी जड़ता में अर्थपूर्ण प्राणों का संचार कर सकें, तथा गज़ल के प्रत्येक शेर की दो पंक्तियों (मिसरों) में अपने भावों, उद्गारों, अनुभूतियों, अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकें। गज़ल की बाहरी संरचना में छंद-काफिया-रदीफ का महत्त्वपूर्ण योगदान है। रचना का सही छंदोबद्ध होना जरूरी होता है, साथ में छंद-बहर की विशिष्ट लय का निर्वाह भी आवश्यक है।

यह एक कला है जिसके लिए हमें शुरूआती पड़ावों में हर कदम पर एक गुरु की जरूरत होती है, जो गज़ल के अदब-आदाब से वाक़िफ कराता है, तब जाकर हममें वह सलीका, वह शऊर, वह सलाहियत, वह योग्यता एवं क्षमता उत्पन्न होती है- और ऐसे कलात्मक शेर सृजित करने में समर्थ होते हैं। सच तो यह है कि कथ्य और शिल्प समंजस्य/मिश्रण से ही एक सही गज़ल का निर्माण होता है।

जैसे कि मैं पहले बता चुकी हूँ कि मुझे गज़ल सीखने के दौरान मार्गदर्शन मिला सिन्धी समाज के वरिष्ठ शायर श्री प्रभु वफा जी से। जिन्होंने इस नई विधा के बीज मेरे जेहन में भर दिये, और वे इस कदर अंकुरित हुए कि मैं शिद्दत से इस राह पर वेग के साथ चलती रही।

यह मेरी खुशनसीबी है, जब 2006 में मैं न्यूजर्सी से मुंबई आई तो मेरा परिचय एक दस्तावेजी हैसियत श्री आर. पी. शर्मा 'महर्षि' गज़ल संसार के जाने माने छंद-शास्त्र के हस्ताक्षर से हुआ। उन्होंने गज़ल के बाहरी और आंतरिक स्वरूप, काफिया या रदीफ, कथ्य एवं शिल्प तथा गज़ल की अन्य बारीकियों की विस्तार से चर्चा करते हुए मेरी राह को रौशन किया। इसमें किंचित

मात्र दो राय नहीं की गुरु ऊसर (बंजर जमीन) को उर्वरा बनाने में सक्षम होते हैं। **आपकी गज़लों का मूल स्वर क्या है तथा उसमें आप ने किन जीवन मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया है?**

गज़लकारों ने जीवन के हर रस पर कलम चलाई है, जिसमें नौ रस समोहित रहते हैं। शृंगार, हास्य, करुण, वीभत्स, वीर, अद्भुत, त्यों रौद्र, फिर भयानक है नवम, शांत रस लेकिन सूफी शायरी में एक सकारात्मक भाव प्रतीक बन जाता है, रात के अंधेरे जब घने होते हैं तो उनको चीरकर रौशनी निकलती है, जहाँ आकर अंधेरा रौशनी के साथ यूं घुल-मिल जाता है, जैसे दूध में पानी, जैसे परमात्मा में आत्मा का लीन होना। यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। पर अब जीवन की जटिलताओं से प्रेरित होकर गज़लें कई विषयों पर लिखी जाने लगी हैं। आज की गज़ल विभिन्न जीवन आयामों को प्रतिबिम्बित करती है, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक, धार्मिक पक्षों को गज़ल के शेरों में अभिव्यक्त किया जाता है, यहाँ तक कि समकालीन गज़ल ने नारी विमर्श, दलित विमर्श, आर्थिक विमर्श, और जाने कितने ही ऐसे विमर्श और हैं.....!!

मैं अपनी संघर्षमय जिन्दगी की संकीर्ण सुरंगों से गुजरते-गुजरते कई बार जख्मी हुई, पर एक अटूट विश्वास मन में रहा, जो कभी अंधेरी राहों पर भी डगमगाने न पाया। शायद यह मेरी आस्था है, कि मेरे भीतर कोई मुझसा बैठा है जो मुझसे बतियाता है, जिसके साथ मैं खुद को, अपने हर उस दर्द को बाँट लेती हूँ, जो बिना उसकी रजा से कभी मुझे छू तक नहीं पाता। वही मेरी हर चोट को मरहम लगाता है, मेरी आँख के हर आँसू को अपने आँचल से सोख देता है.!!

यह एक अनुभूति है, उसकी निवाजिश है, जो मेरी हर कठिनाई को आसानियों में

बदल देती है। यह एहसास मुझे हर उस दौर से गुजर जाने के बाद होता है, जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ तो लगता है गोया दुःख ही जीवन में सुख के परिचायक होकर हमारे साथ-साथ हमसफर बनकर चलते हैं। बरसों पहले प्रदीप जिलवाने की एक कविता का अंश पढ़ते लगा था और आज भी लगता है- “दुःख, हमारे जीवन का एक हिस्सा है, देह के जरूरी अंग सा। मेरे घर का एक ही रास्ता है, मगर दुःख न जाने किन-किन रस्तों से चला आता है दरवाजे तक।” यह कविता हमसे बतियाती है, सहजता से मगर दृढ़ता से मानुषी के पक्ष में खड़ी हुई है।

दुनिया का कोई किस्सा ऐसा नहीं है जो सुना-सुनाया नहीं लगता, पुराना होने के बावजूद भी वही दर्द का भाव दोहराने पर अपना-सा लगता है। और दिल की धड़कन उस दर्द में शामिल होकर हिलोरे खाती है।

फैज़ का यह शेर भी दुःख में ऐसे ही सुख के एहसास को दर्शा रहा है....!

“और भी दुःख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा, राहतेँ और भी है वस्ल की राहत के सिवा” मैंने भी जाने किस पल, सोच की उसी दिशा में लिखा है.....!

“दर्द नहीं दामन में जिनके खाक वो जीते खाक वो मरते।

जाने क्यों लिखे है मेरे जब्बे फिर से!!”

जीवन एक संघर्ष है, हर इंसान को अपने हिस्से की लड़ाई लड़नी पड़ती है।

ऐसा क्यों होता है कि यह दस्ताने-दर्द अक्सर औरत के दामन में पनाह पाता है? वहीं पनपता है और खिले हुए जख्मों की खुशबू अपने आस-पास फैलाता हुआ, जिन्दगी की बहार के पश्चात खिजाओं के थपेड़ों से थक हार कर दम तोड़ देता है। यहीं पर जिन्दगी का जलता हुआ चराग बुझ जाता है। दिल के तहखानों में सन्नाटा भर जाता है। उस सन्नाटे भरी सुरंग में

रचनाकार के मन में एक सोच का उजाला जन्म लेता है, जहाँ वह अपने आप से जूझता हुआ उस रेशम के कीड़े की तरह जो रेशमी तानों-बानों की बुनावट में खुद को कैद कर लेता है। वहीं से एक नया जीवन संचार करता है। बहुत खोने और पाने के बीच का सफर तय करते हुए वह मन ही मन खुद से जुड़ने लगता है। इस नए सफर में अपने अहसासों की अभिव्यक्ति के माध्यम से वह अपने जीवन की सच्चाइयों के आलम से फिर नए सिरे से जुड़ने लगता है। यहीं आकर आप-बीती, जग-बीती बन जाती है और जिसे पढ़ते ही कभी आंखें नम हो जाती है तो कहीं लबों के पोर मुस्करा उठते हैं।

मैंने इसी दर्द और बेचैनी से दोस्ती कर ली.....और मुझे उस हर मत में अकीदत है, जो मुझे बाहर और अंदर से जोड़ता है, मुझे परेशान रात में राहत की नींद सुलाता है, मेरे सामने अनदेखे नक्शे-पा जाहिर कर जाता है...जिनपर चलकर आज मैं जिंदगी का एक लंबा सफर तय कर आने के पश्चात जब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो यूँ लगता है मैंने जितना खोया है, उससे कहीं ज्यादा पाया है... एक अजीम शायर का यह शेर है कि...

“हमने इस इश्क में क्या खोया है क्या सीखा है / जुज तेरे और को समझाऊँ तो समझा न सकूँ।

(जुज=अध्याय, बाब, अलावा, अतिरिक्त)

हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल का भविष्य क्या है? आप की राय जानना चाहती हूँ क्योंकि ग़ज़ल अभी हिन्दी साहित्य में अपनी दिशा ढूँढ रही है?

बहुत ही उज्ज्वल! शायरी की विशाल सड़क को अपनी रफ्तार से तय करते हुए ग़ज़ल अपनी दशा और दिशा खुद ढूँढ निकालने में सक्षम हुई है। आज बहुत कुछ

ग़ज़ल और ग़ज़लकारों के बारे में लिखा जा रहा है, जिसमें शामिल है आजकल के दौर के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक सरोकार। हर दिशा और दशा को लेकर गद्य और पद्य में लिखा जा रहा है, और सही दिशा में ही लिखा जा रहा है। आज के दौर में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, भ्रूण हत्या जैसी समस्याओं पर लेखन खुद अपना परिचायक बन गया है। ग़ज़ल भी विविध रंगों में अपनी उड़ान भर रही है। **आप अनुवाद करती हैं, समीक्षा भी लिखती हैं, कभी-कभी लघुकथा भी लिख लेती हैं। कौन सी विधा आपको सबसे अच्छी लगती है?**

सच कहूँ तो, मुझे ग़ज़ल बहुत प्रिय है, वह मुझे स्पेस देती है, सोचने का, लिखने का, और किसी भी विषय पर, जिस दिशा में भी सोच ले जाए, बस मनचाहे बहर में दो मिसरे लिख लेना कुछ आसान सा लगता है। कोई कड़ी नहीं टूटती, किसी सोच की धारा में रुकावट नहीं आती।

शायरी हो या लेखन की कोई भी विधा क्यों न हो, यह हर एक व्यक्ति की अपनी रचनाधर्मिता है, जो वह अपने स्वतंत्र विचारों को खुले दिल से लिखता है, बिना किसी दबाव के, और इसीलिए वह शायद कहीं न कहीं अपनी आप-बीती के बिम्ब भी अपने अंदर के धँसे हुए कोनों से निकाल लाता है। यह उसकी रचना और उसके नए व्यक्तित्व का निर्माण भी है। और खुद किया हुआ हर नव निर्माण आकर्षित करता है। इसके लिए ‘भीतर और बाहर’ की परस्परिक अंतक्रिया की सही, समझ और परख भी विवेक और दृष्टि दोनों को विकसित करती है, और शायर को अपने निजी दायरे से निकालकर व्यापक इंसानी सरोकारों से जोड़ती है, उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य की संकलित चेतना को जागृत करती है। फिक्र क्या, बहर क्या, क्या ग़ज़ल, गीत

क्या। 'मैं तो शब्दों के मोती सजाती रही स्वरंचित।

क्या अंतरजाल हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में सहायक हो सकता है। यह इसलिए पूछा है कि आप चिट्ठा जगत में भी सक्रिय हैं?

यकीनन है और होता रहेगा। हाँ अंतरजाल के कारण वैश्वीकरण आया है, हिन्दी के लेखक कम्प्यूटर का प्रयोग करने में सक्षम हो गए हैं, अपनी रचनाएँ अंतरजाल पर लिख भेजते हैं और अपनी टिप्पणियाँ भी प्रस्तुत करते हैं। एक तरह से हिन्दी भाषा को भी बढ़ावा मिला है, कि लोग अपनी राष्ट्रीय भाषा में देश-विदेश के किसी भी कोने में बैठे, अपनी बात पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार विश्व हिन्दी साहित्य को एक सांझा मंच मिल गया है। जिसमें बहुत सी वेब पत्रिकाओं, अंतरजाल पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है। अपने-अपने ब्लॉग बनाकर भाषा को और समृद्ध किया गया है इसमें कोई दो राय नहीं।

अमेरिका आपकी सृजनात्मक प्रक्रिया में कितना सहायक सिद्ध हुआ?

मानव-मन अपनी गति से चल रहा है और भाषा का तरल प्रवाह पाठक के मन को मुक्ति नहीं दे पा रहा है। यह सच है कि हिमालय की हर चट्टान से गंगा नहीं निकलती लेकिन कलम की तेज धार से लेखक के मन की व्यथा एक उर्वरा बन कर बहती है। फिर भी विदेश के माहौल के अनुरूप सृजनात्मक प्रवाह, मानव-मन को टटोलकर, उसके भीतर की उथल-पुथल को अपनी शैली, शिल्प, भाषा के तेवरों में ढालकर अभिव्यक्त करने की माहिरता पा लेता है, जहाँ उसकी सृजनात्मक, कलात्मक अनुभूतियाँ संभावनाओं की नयी दिशाएँ उजगार करती हैं। विदेशों में रहते लोग मन से फिर भी भारतीय हैं, अपने देश की मिट्टी से जुड़े रहते हैं। शायद यही एक भारतीयता

का जज्बा है, जो देश की भाषा, भारतीय संस्कृति, हिन्दी और भाषाई साहित्य से खुद भी जुड़े रहते हैं।

हालांकि अमरीका के जीवन में लेखक को कई विपरीत दशाएँ और दिशाएँ मिलती हैं। जिन्हें चुनौती पूर्ण रूप में स्वीकारना ही पड़ता है। अमेरिका की जीवन शैली अलग है। रहने का ढंग, ओढ़ने का ढंग, बिछाने का ढंग अलग है। वह एक जरूरत है, जो बदलाव चाहती है, और उसी माहौल की सभ्यता को अपने कार्यक्षेत्र में अपनाना भी तो उसी जरूरत का अंग है। और इसी माहौल का सदुपयोग करते हुए नव निर्माण की राहों पर मैंने भी अपने सिन्धी और हिन्दी साहित्य के अनेक अंशों का सृजन न्यूजर्सी में किया है।

आप वर्ष का आधा समय भारत में और आधा समय अमेरिका में रहती हैं। दोनों देशों के साहित्यकारों की साहित्य सृजना में आप क्या अन्तर पाती हैं?

यह सच है कि अब मैं अपनी पारिवारिक जवाबदारियों से काफी हद तक मुक्त होकर खुद को आजाद पा रही हूँ। पारिवारिक संबंध के साथ-साथ लेखक का एक रिश्ता अपने अंदर के रचनाकार के साथ भी स्थापित होता है, जो उससे समय भी माँगता है, और साथ भी। पिछले चार सालों से मैं भी नियमित सर्दियों में भारत में रहती हूँ।

एक बात जरूर है, यहाँ भारत में आकर मुझे एक साहित्यिक माहौल मिलता है, साहित्यकारों से मिलने का, ख्यालों के आदान-प्रदान का अवसर मिलता है, जो सोच को एक अलग दिशा और स्फूर्ति देता है। यहाँ लिखते समय संदर्भ के लिए, मनचाहे विषय पर साहित्य सुविधा से उपलब्ध हो जाता है। विषयानुसार प्रिंट में भी मन चाहे विषय पर साहित्य उपलब्ध हो जाता है, जो लेखन कार्य में एक सुविधाजनक

कड़ी साबित होती है।

दोनों देशों के साहित्यकारों में कुछ अंतर जरूर पाया जाता है, पर यह हमारे जीवन शैली और परिस्थितियों की उपज ही है, जो हमारे मनोभावों पर हावी होती हैं।

जहाँ मानवीय मूल्यों की बात है सभी देशों का साहित्य एक-सा होता है। सामाजिक मूल्यों वाली रचनाएँ यहाँ भी और वहाँ भी लिखी जा रही हैं। फर्क यह होता है कि लेखक जहाँ कहीं भी रहता है, अपने परिवेश, अपने आस-पास के माहौल के संदर्भों को अपने लेखन की विषय-वस्तु बना लेता है।

जहाँ तक भारत और विदेश के साहित्यकारों की साहित्य सृजन में अंतर का सवाल आता है, मैं इतना जरूर कहूँगी कि हम जिस परिवेश में रहते हैं, जो अपने आस-पास देखते हैं, महसूस करते हैं, भोगते हैं, जीते हैं, उन्हीं अहसासों के तानों-बानों को अपनी रचनाओं में बुनते हैं, उड़ेधते हैं, अपनी रचना में साकार करते हैं। और वैसे भी कोई कलमकार या कलाकार अपनी कलाकृति से दूर तो नहीं होता! जो अपने भीतर जब्त करते हैं उसे ही तो अपनी रचनाओं की खला में खाली कर देते हैं। इसी एवज शरत बाबू ने जब कवि रविंद्रनाथ टैगोर से अपनी जीवनी लिखने को कहा तो उन्हें यह उत्तर मिला 'अपनी आत्मा कथा लिखकर मैं लोगों का बोझ नहीं बढ़ाना चाहता। जो मुझे जानना चाहता वह मुझे मेरी रचनाओं में देख सकता है। क्या मैं वहाँ नहीं हूँ? जो उनके लिए एक पुस्तक और बढ़ाऊँ।'

अंत में अकबर इलाहाबादी के इस शेर के साथ शुभकामनाएँ...

“दुनियाँ में हूँ, दुनियाँ का तलबगार नहीं हूँ / बाजार से गुजरा हूँ, खरीदार नहीं हूँ।”

...